नाटक: तत् क्षण योग्यता

https://youtu.be/R_Bu1wenbJI?feature=shared

श्री आदिनाथ जिनबिंब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव, सोनगढ, २०२४

Title: तत् क्षण योग्यता

नाटिका परिचय

मंच संचालक: तो आइए अब श्री बाहुबली भगवान के जीवन की एक अनोखी क्षण की कथा सुनते है। वैसे तो श्री अदिपुराण आदि प्रथमानुयोग के ग्रंथों में श्री बाहुबली भगवान के जीवन के कुछ कथानक ही मिलते है। लेकिन लेखक ने यहां एक मनोरम कल्पना के माध्यम से, श्री बाहुबली भगवान के मन में चल रहे अंतर्मंथन को, उनके मन में चल रही बारह भावना के चिंतवन को चित्रित किया है। इस नाटिका को अपने ज्ञानी धर्मात्मा ओं के वचनामृत – १) पूज्य गुरुदेव श्री के वचनामृत, २) द्रष्टि ना निधान, ३) पूज्य बहेन श्री के वचनामृत और ४) द्रव्य द्रष्टि प्रकाश के विविध बोलों के माध्यम से लिखा गया है।

नाटिका प्रारंभ

पार्श्व स्वर (Voice over):

ज्ञानी, ज्ञानी वे हैं जिन्हें स्व पर की एकत्व बुद्धि छूट गई है। ज्ञानानंद स्वभाव वह मैं हूं और राग मुझसे भीन्न चीज है वैसा वे जानते हैं। फिर भी उन्हें राग आता है, विकार भी होता है, परंतु ऐसा उन्हें स्व पर की एकत्व बुद्धि से नहीं होता और निमित्त के कारण से भी नहीं होता। राग तो होता है पर्यायमें अपने षटकारक की योग्यता से और परिणति की स्वतंत्रता से।

वैसी ही एक अनोखी अद्‌भुत अविस्मरणीय योग्यता की यह बात है।

श्री भरत चक्रवर्ति के साथ युद्ध के पश्चात और दीक्षा लेने से पूर्व श्री बाहुबली भगवान ने अद्‌भुत पुरुषार्थ जगाया था, 12 भावनाओं का चिंतवन किया था ।

वह अनुपम क्षण जब श्री बाहुबलीजी विकारी से निर्विकारी होने की पगडंडी पर चल पड़े...

तो आइए देखते है नाटक "**तत् क्षण योग्यता**"

मंगलाचरण:

मंगलम् सिद्ध परमेष्ठी, मंगलम् तीर्थंकरम् ।

मंगलम् शुद्ध चैतन्यं, आत्म धर्मोस्तु मंगलम्[1] *॥*

विषयाशावशातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः ।

ज्ञान–ध्यान–तपोरक्तः तपस्वी स प्रशस्यते[2] *॥*

श्री दिगंबर जिनबिंब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
सोनगढ

---

[1] श्री दसलक्षण धर्म विधान, कविवर पं. राजमलजी पवैया

[2] श्री रत्नकरंडक श्रावकाचार, गाथा १०

(१) **द्रष्य १**

कथावाचक: ॐ सहज चिदानंद।[3] मैं तत समय की योग्यता हूँ। विश्व के प्रत्येक द्रव्य अपनी पर्यायगत योग्यता से अपने समय में परिणमन करते है। कोई द्रव्य अन्य द्रव्य को परिणमित नहिं कर सकता, अरे! द्रव्य स्वयं भी अपनी पर्याय में कुछ नहिं कर सकता। पर्याय स्वयं अपने षट् कारक से अपने समय में परिणमित होती है। मैं वह योग्यता हूँ जो इस परिणमन मैं कारणभूत हूँ। मैं कभी नहीं हिलने वाला वह खूटा हूँ जो अपने समय में अचलित रहता हूँ।[4] और क्रमबद्ध स्वभावी हूँ। मुझे बदलने की क्षमता इंद्र, नरेंद्र या जिनेंद्र में भी नहीं।

मेरे त्रिकाल प्रवाह में ना कोई घटना अच्छी है और ना बुरी। फिर भी कभी-कभी कोई विशेष पर्याय काल के प्रवाह में अमर हो जाती है। ऐसी ही एक अनोखी घटना तब हुई थी जब श्री बाहुबली भगवान ने भरत चक्रवर्ती को तीन युद्ध में पराजित किया और क्रोध आवेश में भरत चक्रवर्ती ने उन पर चक्र चला दिया।

(स्क्रीन पर भरत चक्रवर्ती ने बाहुबली पर चक्र चलाया एसा द्रश्य)

श्री बाहुबलीजी स्तब्ध हो गये और उनके लिए समय जैसे थम गया। मैं भी उस क्षण का स्वयं साक्षी हूं। श्री बाहुबलीजी को संसार असार लगने लगा। उनका अंतर्मन उनको संसारी से सिद्ध, पामर से परमेश्वर, मानव से मुनि और कामदेव से केवली बनने के लिए प्रेरित करने लगा। एक ओर पुरुषार्थ की प्रेरणा थी और दूसरी ओर कर्मों की विडंबना ...

बाहुबली: अरेरे... धिक्कार है, धिक्कार है यह असार संसार को धिक्कार है। हाय हाय ... इस पृथ्वी के राज्य के लिए भाई भरत ने मुझ पर चक्र चला दिया? हे आदिप्रभु, क्या जीव इतना स्वार्थी होता है? मैंने भी तो सिर्फ अपने स्वाभिमान को पोषने के लिये भाई भरत को युद्ध में चुनौति दे दी । हे प्रभु! मेरा अंतर्मन दुःख से द्रवित हो उठा है। हे मेरे अंतर्मन, काश तुम कहीं से इस दुःख से समाधान करने का मार्ग ढूंढ लाते। काश..

अंतर्मनः काश ... काश, इस दुख से समाधान करने के लिए मैं सक्षम होता.

बाहुबली: अरे ...तुम कौन हो?

अंतर्मनः हे महापराक्रमी बाहुबली! मैं आपका ही अंतर्मन हूँ। मुझे कहीं चैन नहीं पड रहा है। क्या यही संसार का स्वरूप है? मेरे इस क्षणिक शारीरिक संबधों मैं कब तक दुःख भोगूंगा? कब तक?

बाहुबली: हे अंतर्मन इस दुःख से कैसे निकले?

अंतर्मन: इस संसार की मायाजाल से मैं भी थक गया हूँ। अब तो केवल वैराग्य को उत्पन्न करनेवाली बारह भावनाओं का चिंतवन ही मुझे सुहा रहा है। बार-बार निज स्वरूप का, स्वभाव का या तत्त्व का चिंतवन करने से ही अपने वीतराग स्वरूप का दर्शन होगा.

[3] गुरुदेवश्री के वचनामृत, बोल १

[4] द्रव्य द्रष्टि प्रकाश, बोल ४०

बाहुबली: हां! मैं तुम्हारी बात से सहमत हूँ।

अंतर्मन: चलो बाहुबली चलो आत्मभूमि की अनंत गुणों की गुफाओं में चलो, गुफाओं में चलो...

अध्रुवमशरणमेकत्वमन्य – संसारौ – लोकमशुचित्वम्।
आस्रव – संवर – निर्जर – धर्म – बोधीति चिन्तनीयम्[5]॥

अंतर्मन: मैं बाहुबली का अंतर्मन। मुझे ज्ञात है की अनित्य आदि बारह भावनाओं का निरंतर मंथन करने से कषाय रूपी अग्नि बुझ जाती है, राग गल जाता है और वैराग्य प्रज्वलित होता है। अज्ञान रूपी अंधकार विलीन होकर ज्ञान दीप प्रकाशित हो जाता है।

(२) **द्रष्य २**

अंतर्मन: अरे ये मेरे स्मरण में क्या आ रहा है ? लग रहा है कि ये मेरे पूर्व के सातवे भाव की स्मृति है। हां! मैं जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में वत्सकावती देश में था. वहां के राजा प्रतिवर्धन का सेनापति था.. यह दृश्य तो नजर के सामने जैसा अभी अभी हुआ हो ऐसा लग रहा है...हमने मुनिराज से आत्मबोधित संदेश सुना...और तब प्रतिवर्धन राजा ने मुझसे प्रश्न किया।

(सातवा पूर्व भव)

राजा: सेनापतिजी, मुनिराज से अभी हमने सुना के, ये जगत में सर्व प्रकार के संयोग अनित्य है, जैसा सभिका संयोगी शरीर, मरण काल आने पर जरूर ही छूटेगा, कोई भी संयोग नित्य नहीं है, आपका इस बारे में क्या मंतव्य है?

सेनापति: महाराज, आत्मज्ञानी गुरुदेव ने फरमाया के यह संयोग रूपी संसार अनित्य है.... तो इसका अर्थ ये हुआ के नित्य जो वस्तु है वो तो मेरा आत्मा है।

नगर शेठ: हां सेनापतिजी! यह बात को न स्वीकारना ही संसार परिभ्रमण का कारण है।

सेनापति: तो चलो, जो हमारे आत्मा का स्वभाव है, वो सोचे बिना हमने अनंत दुख भोगे है, मगर अब हम सब अनित्य भावना को आत्म सात करने की, भावना भाये, आइये।

अंतर्मन: शरीर की अनित्यता कैसी है। यहां का आयुष्य पूर्ण होने के वक्त ये बात मेरे हृदय में वार कर गई, मगर ये भव तो पूरा हो ही गया।

कैसा हे ये जीव... मृत्यु के समय भेदज्ञान किया, मगर फिर दूसरे भव में भावमरण करने चला गया। तत्पश्चात के भव में मैं उत्तर कुरु भोग भूमि में आर्य हुआ

(छठा पूर्व भव)

आर्य-१: प्रणाम आर्य। बहुत सारे पुण्य के प्रताप से यहीं भोगभूमि में हमारा जन्म हुआ है।

---

[5] वारसाणुवेक्खा, गाथा २

आर्य-२: जन्म हुआ है? आपका यह तात्पर्य है कि पहले मैं कहीं था। और वहां से मेरी मृत्यु हो गई और यहां मेरा जन्म हो गया।

आर्य-३: बंधु... जन्म और मृत्यु तो शरीर के संयोग और वियोग की बात है। मगर आत्मा तो नित्य ही है, इसके लिए आप दुखी ना हो।

आर्य-१: अरे आर्य दुखी क्यूँ हो रहे हो? देखो ये कल्पवृक्ष, ये सुंदर महेल, ये यथा इच्छ भोग, और ये पल्य वर्षकी आयु।

आर्य-२: पल्यवर्ष की आयु?? हे प्रभु... मैं ये असंख्य वर्षकी आयु में कैसे फ़स गया।

आर्य-३: बंधु क्या ये आयु नित्य है? नहीं ना... तो बीत ही जाएगी।

आर्य-२: हां.. आपकी बात सत्य है.. शरीर की अनित्यता और आत्मा की नित्यता का क्या मेल?

आर्य-३: हमे तो आत्माके नित्य स्वभावका स्वीकार करके, इस अनित्य अवस्थासे दृष्टि हटाके, अपने आत्मा का कल्याण करना चाहिए।

आर्य-१: सत्य वचन आत्म प्रेमी, सत्य वचन

अंतर्मन: ऐसे आत्मा के नित्य स्वभाव का चिंतवन करते हुए अनित्य ऐसी भोग भूमि की आयु भी पूर्ण हुई. और संसार का चक्र फिरा और पुण्य के फल में अब मेरा प्रभा नामक विमान में प्रभाकर देव नाम से जन्म हुआ। और मुझे ज्ञात है कि मुझे समोशरण में जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

(पांचवा पूर्व भव)

प्रभाकर देवः ललितांग देव की जय हो।

ललितांग देवः आओ प्रभाकर देव, आओ। बडे प्रसन्न लग रहे हो। कहाँ से आ रहे हो?

प्रभाकर देवः मैं अभी अभी तीर्थंकर परमात्मा के दर्शन करके और दिव्यध्वनी में आश्चर्यकारी बात सुन कर आ रहा हूँ।

ललितांग देवः अच्छा? हमें भी बताइए।

प्रभाकर देवः आप, आज से आठवें भवमें भरत क्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ होने वाले है। और मैं उस भवमें आपका ही पुत्र बाहुबली बनकर मोक्ष प्राप्त करुंगा।

ललितांग देवः अहो! प्रभु के मुख से निकली हुई बात तो विधि का विधान है। इस नश्वर भोगों को त्याग करके मोक्ष प्राप्त करने के लिए मैं तत्पर हुं।

प्रभाकर देवः किंतु... हे ललितांग देव, क्या यह इंद्र समान भोग, रोग रहित शरीर, अप्सराओं के समान देवांगनाऐ असीम पुद्गल रत्न — क्या यह कोई भी नित्य नहीं है?

ललितांग देवः नहीं, सब **अनित्य** ही है। आयु पूर्ण होते ही इन सबका वियोग निश्चित है। परमार्थ से तो एक यह मेरा चैतन्य परमात्मा ही नित्य है। शाश्वत है। और ऐसे नित्यका चिंतन करना ही अनित्य भावना है ।

अंतर्मनः आयु के अंत समय की क्षण आने पर फूलों की माला भी करमाने लगी और सब वहीं का वहीं रह गया । हे अनित्य संसार...अनित्य संसार...

अब मैं फिर से मनुष्य पर्याय पहूँच गया। लेकिन यह भव अन्य भव की तरह साधारण भव नहीं था। इस भवमें मैं राजा वज्रजंघ का अकंपन नामक सेनापति बना। ...अरे मुझे क्या स्मरण आ रहा है! और यह कैसा विचलित करने वाला दृश्य था।

(चौथा पूर्व भव)

दासः अकंपन सेनापति की जय हो। सेनापति, एक दुःखद समाचार है। राजन के कक्ष में रात को धूप जलाई थी उसके धूंए से मूर्छित होकर निद्रा में ही राजा वज्रजंघ की मृत्यु हो गई। उनकी आयु पूर्ण हुई।

अकंपन सेनापति: क्या? इंद्र समान विभूति रखने वाले राजा वज्रजंघ का ऐसा अंत? हे प्रभु यह कैसी संसार की विचित्रता है। प्रजा तो राजा की शरण में रहती है, लेकिन मृत्यु के समय राजा स्वयं ही अशरण हो गए? मेरा चैतन्य परमात्मा ही मुझे शरण है, बाकी सारा जगत **अशरण** ही है।

अंतर्मन: इस संसारकी अशरणता देखकर मैं तत्काल ही उत्कृष्ट जिनेश्वरी दीक्षा धारण करने के उद्देश्य से जा पहुँचा श्री दृढ़धर्म आचार्य के समीप ।

अकंपन सेनापति: हे मुनिवर, कृपा करके मुझे इस अशरण जगत से छूटने का उपाय बताइऍ।

श्री दृढ़धर्म आचार्य: जैसे मोती का पारखी सच्चे मोतियों को अलग कर लेता है, उसीप्रकार आत्मा को प्रज्ञा से ग्रहण करना । जो जाननेवाला है, जो देखनेवाला है सो मैं - इसप्रकार उपयोग सूक्ष्म कर के हे भव्य जीव आत्मा को और विभाव को प्रथक् कर[6] ।

अकंपन सेनापति: प्रमाण वचन गुरुदेव।

अंतर्मन: निर्विकल्प ध्यान के पहले अनेक प्रकार का चिंतन घंटो तक चला था; मगर अब तो मुझे चिंतन भी भट्ठी-सा लगने लगा था । चिंतन भी चिता है, आकुलता ही है[7]। पूर्णता के लक्ष से शुरूआत ही सच्ची शुरूआत है[8]। जब, मैंने अवलम्बन अंदर चैतन्य परमात्मा का लिया, और उसमें ही उग्रता होनेपर निर्विकल्पता हो गई और मैं आत्मानंद में मग्न हो गया[9]।

(सम्यक्दर्शनकी प्राप्ति)

બિંબ પંચકલ્યાણક પ્રતિષ્ઠા
સોનગઢ

---

[6] बहेनश्री के वचनामृत, बोल १९७

[7] द्रव्य द्रष्टि प्रकाश, बोल १४४

[8] गुरुदेवश्री के वचनामृत, बोल ६

[9] द्रव्य द्रष्टि प्रकाश, बोल १७८

अंतर्मन: अंततः यह वह क्षणगत योग्यता थी जब मैंने मेरे जीवनमें मंगल सुप्रभातरूप सम्यक्दर्शन प्राप्त किया; सम्यक रत्नत्रय रूप संपदा को प्रकट कीया। अहो...सम्यग्दर्शन होने पर आत्मा के प्रदेश-प्रदेश में आनन्द का जन्म हो गया। असंख्य प्रदेश आनन्द से उछल गये। सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व। सम्यक्त्व में चोदह ब्रह्माण्ड के भाव आ गये[10] । **"धन्य वह घड़ी, धन्य वह क्षण की योग्यता।"**

मुनि दशामें उत्कृष्ट आनंद का भोग करते करते समय कहां चला गया वह पता ही नहिं चला, और समाधि पूर्वक आयु पूर्ण हुई ।

(तीसरा पूर्व भव)

अंतर्मन: अब मैं अधो ग्रव्यैक में अहमिन्द्र हुआ। यह संसार दुखित भासित होने लगा। कहाँ मुनिदशाकी धोधमार आनंद की धारा... और कहां यहाँ चौथे गुणस्थानकी अल्प सुख रूप दशा। मगर ये सच को स्वीकारे बिना कोई उपाय नहीं था। तो ग्रैवेयक में मैंने चिरकाल तक अनिच्छनीय स्वर्गके भोगो को भोगते और तत्वचर्चा करने में अपना समय व्यतीत किया।

(दूसरा पूर्व भव)

तब संसार चक्र का चक्र फिरा और मैं फिरसे मनुष्य पर्याय में जा पहुँचा। वहाँ मैं श्री आदि प्रभुके तीसरे पूर्व भवमें वज्रनाभि चक्रवर्ती का भाई पीठ हुआ। और उस भवमें, भाई वज्रनाभि के साथ मैंने भी दीक्षा प्राप्त की। उत्कृष्ट आनंद भोगने का अवसर फिरसे मिला... मगर...यह सुखरूप दशा ... यह भव तक ही सीमित रह गई।

(पहेला पूर्व भव)

यह क्षणिक सुखरूप दशा से जब जब मैं विचलित होता था तब तब शुभभाव तो होते थे... किंतु यह शुभ भावका फल एसा कठोर मिला के उसके बाद के भव में मैं स्वर्ग में ३३ सागर तक सर्वार्थसिद्धि रूपी ज़ैल में क़ैद हो गया। वहाँ शुक्ल लेश्या और मंद कषायरूप परिणाममें निरंतर तत्वचर्चा की, लेकिन सुखकी अखंड धारा दूर दूर तक कहीं नहीं थी। मुनिदशा की अखंड धाराकी इच्छा में ही वो आयुष्य भी पूर्ण हुआ, और वहाँ से च्युत हो कर यह बाहुबली के दुर्लभ मनुष्य भव को मैं प्राप्त हुआ हूँ।

प्रभु !!! प्रभु !!! एक बात बार बार मेरे अंतःस्थल में चल रही है.. की संसार!!! गतिओ के जनम मरण में थोड़े ही है? वास्तवमें जीव की विकारी पर्याय ही संसार है; और सच्चा सुख तो अपने चैतन्य स्वरूप आत्मामें ही है। और यही तो संसार भावना है। बस अब बहुत हुआ... अन्य विचारों से...अन्य विकल्पों से बहुत हुआ.. बस बहुत हुआ...अलम अलम अलम

જિનબિંબ પંચકલ્યાણક પ્રતિષ્ઠા

कथावाचकः इस तरह श्री बाहुबली भगवान के अंतर्मन ने उस क्षण में अनित्य, अशरण और संसार भावनाओं का चिंतन किया। वह सोच रहे हैं कि भव - भवांतरो में यह चैतन्य परमात्मा जीव अनेक प्रकार के संयोगों में

[10] बहेनश्री के वचनामृत, बोल २००

भी अकेला ही रहा है, और इंद्रिय सुख - दु:ख अकेले ही भोगता रहा है। लेकिन जैसे स्वभाव से निर्मल स्फटिक में लाल-काले फूल के संयोग से रंग दिखते हैं तथापि वास्तव में स्फटिक रंगा नहीं गया है, वैसे ही स्वभाव से निर्मल आत्मा में क्रोधमानादि दिखायी दें फिर भी वास्तव में आत्मद्रव्य उनसे भिन्न है । यही पर से **एकत्व** तोड़ने की और स्व से एकत्व जोडने की भावना श्री बाहुबली भगवान ने की[11]।

(३) **द्रष्य ३ – एकत्व भावना भक्ति – जीव तू है सब बात अकेला[12]**

(४) **द्रष्य ४**

अंतर्मन : यह आत्मा अनंत काल से भवों भव में फिरता रहा है और थक चुका है; फिर भी यह अस्थिरता जन्य राग मेरे अंतरंग में क्यूँ चल रहे है? क्यूँ ये मुझे अपनी ओर आकर्षित कर रहे है? क्यूँ मेरी निमित्त आधीन दृष्टि छूटती नहीं है? में इनसे अन्य हूँ और अपने से अनन्य हूँ ये बात क्यूँ मुझे आत्मसात नहीं हो रही है? ऐ मेरे वैराग्य भाव, मेरी सहायता करो... मेरे पुरुषार्थ को प्रेरित करो...मुझे **अन्यत्व** भावनाका स्वरूप स्वीकार करने में मदद करो... मदद करो...

वैराग्य: हे आत्मन, विश्व के सभी पदार्थ अन्य-अन्य है; और यही अन्यत्व भावना है। वह अन्यत्व का त्याग कर, अनंत गुणस्वरूप आत्मा, उसके एकरूप स्वरूप को द्रष्टि में लेकर उसमें एकाग्रता का प्रयत्न करना वह ही पहेले में पहेला शांति – सुख का मार्ग है।[13]

संयोगः अरे अरे अंतर्मन ठहरो। जरा मेरी भी तो बात सुनो।

अंतर्मनः तुम कौन हो?

संयोगः मैं आपके इस भव के संयोग हूँ। श्री बाहुबली के पास मेरा पूर्ण वैभव प्रगट है। आप ऐसे कैसे पुण्यकर्मजनित इन संयोगों को ठुकरा सकते हो? इतनी सारी सुंदर सुंदर पत्नीयाँ, ऐसे आज्ञाकारी पुत्र, इतनी अतुल्य अमाप संपत्ति। ये सब आपसे अन्य थोड़ी ना है? ये तो आपके अपने ही तो है।

अंतर्मनः हाँ आपकी बात सत्य तो लग रही है। मैं तो जीव हुं, लेकिन इस भव में तो ये सारे संयोग मेरे ही है ना...

वैराग्यः अरे रे अंतर्मन सावधान... यह तो पंखी के मेले जैसा है। इकट्ठे हुए हैं वे सब अलग हो जायेंगे। आत्मा ही एक शाश्वत है, अन्य सब अध्रुव है; सो बिखर ही जाएँगे ।[14] मनुष्य-जीवन में आत्मकल्याण कर लेना ही योग्य है।

જિનબિંબ પંચકલ્યાણક પ્રતિષ્ઠા
સોનગઢ

---

[11] बहेनश्री के वचनामृत, बोल ८१
[12] भक्ति – जीव तू है सब बात अकेला, कविवर भागचंदजी
[13] गुरुदेवश्री के वचनामृत, बोल १७
[14] बहेनश्री के वचनामृत, बोल ९९

संयोगः हे वैराग्य भाव ... चलो एक बार आपकी बात मान भी ले... मगर भरत चक्रवर्ती इनके ही भाई है, शलाका पुरुष है, छह खंड को उन्होंने ही जीता है.. क्या यह बात गर्व करने योग्य नहीं है? क्या भरतजी इनसे अन्य है?

वैराग्यः अरे संयोग ! व्यर्थके तर्क क्यूँ प्रतिपादित करता है ? समकिती चक्रवर्ती छह खण्ड को नहीं, अखण्ड को साधते हैं। जिनकी दृष्टि में ज्ञायक भाव की अखण्डता कभी नहीं छूटती वह तो अखण्ड को ही साधें न![15]

अंतर्मनः वैराग्य, यह तो विदित सत्य है, और मैं इसे स्वीकार करता हूँ। मगर एक विचार तुम भी तो करो के मेरे बाहु के बल के सामने तो चक्रवर्ती भाई भी नहीं टीक सके| मेरे यह शरीर के संहनन के सामने वो भी नत मस्तक हो गये।

शरीरः बिलकुल सही कहा। मेरा संहनन अतुल्य है! मेरा संहनन अतुल्य है! मेरे यह शरीर के संहननके सामने वो चक्रवर्ती भाई भी नत मस्तक हो गये। छह खंड को जीतने वाले मुझसे तीन मामूली युद्धमें हार गए। मेरी क्षमता तो अतुल्यही है!

अंतर्मनः कौन हो तुम?

शरीरः मैं बाहुबली का शरीर हुं।

वैराग्यः हे शरीर तू तेरा कार्य करता है... आत्मा आत्मा का। शरीर और आत्मा दोनों भिन्न स्वतंत्र है। (अंतर्मनकी ओर देखकर) अंतर्मनः तू तो अपने को चैतन्य स्वभावी आत्मा ही मानता है, मिथ्यात्व भाव तो नहिं करता। फिर क्यों यह शरीर में आसक्ति करता है। देहके लिये अनंत भव व्यतीत किए... पर अब यह जीवन आत्मा के लिये अर्पित कर।[16]

संयोगः अरे अंतर्मन मेरी एक बात सुनो। बाक़ी सब बात एक तरफ़। आप के पिता यह भरतक्षेत्र के अवसर्पीणी काल के प्रथम तीर्थंकर है। तो क्या यह तीर्थंकर प्रकृति और दिव्यधनि अद्भुत संयोग नहीं है?

वैराग्यः संयोग संयोग ... क्यों तुम अंतर्मन के लिए असमंजस खड़ी कर रहे हो। तुम्हें पता है, जो भाव से तीर्थंकर गोत्र बंधता है वो भाव भी नुक़सान का ही कारण है|[17] (अंतर्मन को देख के) - अरे भव्य, तीर्थंकर का योग मिला ऐसे उसमें लाभ मानता है, तो कैसे छोड़ेगा? ऐसे भाव से नुकसान ही है, लाभ नहीं ।[18]

अंतर्मनः हां ... अनंत काल से जीव को स्व से **एकत्व** और पर से **अन्यत्व** की बात रुची ही नहीं । पर से एकत्वबुद्धि तोड़कर भिन्न तत्त्व को -- अबद्धस्पष्ट, अनन्य, नियत, अविशेष एवं असंयुक्त देखे तो ही आत्मा का अनुभव कर सकता है ।[19]

જિનબિંબ પંચકલ્યાણક પ્રતિષ્ઠા મહો...
સોનગઢ

[15] द्रव्य द्रष्टि प्रकाश, बोल २७८
[16] बहेनश्री के वचनामृत, बोल ५२
[17] द्रव्य द्रष्टि प्रकाश, बोल ४७
[18] द्रव्य द्रष्टि प्रकाश, बोल ६२
[19] बहेनश्री के वचनामृत, बोल ७७

शरीरः मेरे अधिष्ठाता जीव, रुको रुको; मेरी बात भी तो सुनो। आप कोई ऐसे वैसे व्यक्ति थोड़ी हो, आप तो साक्षात कामदेव हो। आपका सौंदर्य अतुल्य है। आपका सुवर्ण रंग मनमोहित करने वाला है। आप तो पुष्पबाण ऋद्धि के धारक हो। आपको संपूर्ण भरतक्षेत्र में कौन नहीं पहचानता?

वैराग्यः अरे! फूल बाग में हो या जंगल में, उसे कोई सूँघो या न सूँघो, उसकी कीमत तो स्वयं से है; कोई सूँघे, तो उसकी कीमत बढ़ नहीं जाती, अथवा नहीं सूँघे, तो वह मुरझा नहीं जाता। इसी तरह कोई अपने को जाने या न जाने उससे अपना मूल्य थोड़ा ही है? अपना मूल्य तो अपने से ही है|[20] हे भव्य ! तू शरीर को न देख । राग को न देख। यह सभी तो **अशुचि** से भरे हुए है। अरे...एक समय की पर्याय को न देख ! तेरे पास पूर्णानन्द प्रभु स्थित है, उसे ! देख ।[21]

शरीरः हे अंतर्मन तुम्हे ज्ञात है यह समग्र भरतक्षेत्रमें बाहुबली की देह सबसे उंचि ५२५ धनुष की है, जब की भरत चक्रवर्ती जैसे महान जीवों की अवगाहना भी केवल ५०० धनुष ही है। तो क्या यह शरीर कि विशेषता प्रत्यक्ष दर्शित नहीं है?

वैराग्यः हे शरीर अब अपनी बड़ाई करना बस कर। क्या तुझे ज्ञात है के तुम्हारे अंदर पाँच करोड़ अड़सठ लाख निन्यानवें हजार पाँच सौ चौरासी रोग रहे हुए हैं। देह तो रोग की मूर्ति है। भगवान आत्मा आनन्द की मूर्ति है।[22]

वैराग्यः अरे अंतर्मन बहार के अनित्य संयोग और अशुचि से भरे हुए शरीर पर तूझे राग आता है? संयोगो या शरीर – दोनों पर है। स्वयं अशुचि है, इसलिए धर्म नहिं। इनसे तथा इनके राग से भिन्न होने पर ही भीतर आत्मा में प्रवेश होता है। ऐसा ही वस्तु का स्वरूप है।[23] उस वस्तु स्वरूप में समा जाओ... समा जाओ....समा जाओ...!

अंतर्मनः अपने पूर्व भव के स्मरण और वैराग्य भाव से मेरे परिणाम भी विभाव से विमुख होकर स्वरूप की ओर बढ़ना चाहते है। कहाँ मैं भाई भरत के चक्र चलाने से उद्वेग कर रहा था, और कहाँ अपने स्वरूप में स्थिर होने के शांत परिणाम। पर्यायद्रष्टि का फल संसार है, और द्रव्यद्रष्टि का फल वीतरागता-मोक्ष है।[24] यह विभावभाव हमारा देश नहीं है। इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे ? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगना। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वीर्यादि अनंतगुणरूप हमारा परिवार बसता है वह हमारा स्वदेश है। हमे भी उस स्वरूपस्वदेश की ओर जाना है। हमें त्वरासे अपने मूल वतनमें जाकर आरामसे बसना है जहाँ सब हमारे हैं।[25]

हे वैराग्य, अभी भी मैं तो युद्ध भूमी में खडा है। मुझे ये द्वंद चल रहा है। वैराग्य से भेदज्ञान की धारा तो चली, मेरी निज परिणति क्यूँ पुनः शुभ भाव के सम्मुख हो रही है? **आस्रव** भाव में प्रवृत्त हो रही है ?

[20] द्रव्य द्रष्टि प्रकाश, बोल १७२
[21] द्रष्टि ना निधान, बोल ६
[22] द्रष्टि ना निधान, बोल १९९
[23] गुरुदेवश्री के वचनामृत, बोल १०५
[24] गुरुदेवश्री के वचनामृत, बोल १५
[25] बहेनश्री के वचनामृत, बोल ४०१

वैराग्यः वैराग्य भाव से इसका समाधान करने से ही **आस्रव** भावना सार्थक होगी। वस्तु स्वरूप का विचार करना ही आत्मानुभूति का एकमात्र उपाय है. इसलिए ज्ञानी जीव निरंतर भेदविज्ञान की भावना और विचार करते हैं. यह स्त्री, पुत्र इत्यादि तो मुझसे प्रत्यक्ष भिन्न है और शरीर तो मेरा स्वरूप है ही नहीं. यह अचेतन है और मैं तो चेतन हूं. पांच इंद्रियों के विषयों की अग्नि में जलते हुए मेरा मनुष्यभव व्यर्थ जा रहा है।

(५) **द्रष्य ५**

अंतर्मन : हे वैराग्य आत्मा आराधनाके ये परिणाम अंदर में जमते नहीं हैं, बाहर क्यों दोड़ते हैं ?

वैराग्य : जैसे बछड़े को बाँधें नहीं, तो बाहर चरने लगता है; यदि खूँटे में बाँध दें, तो फिरा तो करे, परंतु वहाँ से बाहर नहीं जा सकता है। ऐसे ध्रुव में पर्याय को बाँध दें, तो पर्याय ध्रुव में ही फिरा करेगी, बाहर नहीं जाएगी; फिरना तो उसका स्वभाव है; लेकिन ध्रुव-खूँटे में ही फिरेगी तो सुख तो मिलता ही रहेगा |[26]

अंतर्मनः आस्रव को रोकने के लिए और सुख की प्राप्ति के लिए द्रव्य और पर्याय भिन्न ही है ऐसा अनुभव निरंतर कैसे रहे?

वैराग्यः सुक्ष्म उपयोग करके स्वभाव-विभावके बीच प्रज्ञाछीनी द्वारा भेद कर। जिस क्षण विभावभाव वर्तता है उसी समय ज्ञानधारा से स्वभाव को भिन्न जान ।

अंतर्मनः मगर मैं तो....

वैराग्यः बस अब अगर मगर में मत अटक, आत्मा पवित्रता से भरपूर है, उसके अन्दर उपयोग लगा । आत्मा के गुणों में सरावोर हो जा।[27] आस्रव भाव का सर्वथा त्याग कर और **आस्रव़** भावना को आत्मसात कर।

(भक्ति – ज्ञानी जीव नीवार भरमतम[28], प्रथम अंतरा)

अंतर्मनः अरे रे ! मैं तीन लोक का नाथ होकर राग के आस्रव में रुक गया था। राग में तो दुःख की ज्वाला सुलगती थी, वहाँ से दृष्टि छोड़ दी ! और जहाँ सुख का सागर भरा है, वहाँ दृष्टि जोड़ दी।[29] तो **संवर** भावना प्रगट हुई।

मेरे आत्मा के प्रदेश-प्रदेश में आनन्द का जन्म हो गया है। असंख्य प्रदेश आनन्द से उछल रहे हैं। आहाहा। पूरी दुनिया विस्मृत हो जाये, ऐसा मेरा परमात्मतत्त्व है। शुद्धोहं, बुद्धोहं, निर्विकल्पोंहं, चिद्रूपोहं।

मेरी **संवर** भावना अब मुझे **निर्जरा** भावना की ओर अंगुली निर्देश कर रही है... मैं उसी मार्ग पर आगे बढ़ रहा हूँ आगे बढ़ रहा हूँ...। मुझे प्रत्यक्ष दिख रहा है की मेरे ज्ञान में जैसे-जैसे समझ द्वारा भावभासन बढ़ रहा है, वैसे-वैसे ज्ञान का सामर्थ्य भी बढ़ रहा है और देखो यह ज्ञान भी जहाँ सम्यक रूप परिणामा, वहाँ मोह

---

[26] द्रव्य द्रष्टि प्रकाश, बोल १४५

[27] बहेनश्री के वचनामृत, बोल १०९

[28] भक्ति – ज्ञानी जीव नीवार भरमतम, पं. दौलतरामजी

[29] द्रष्टि ना निधान, बोल ११

समूल नाश हो रहा है। ज्ञान के अतिरिक्त कोई दूसरा आत्मसिद्धि का साधन ही नहीं है। इसलिए ज्ञान से ही आत्मा की सिद्धि यह **निर्जरा** भावना है।[30]

(भक्ति – ज्ञानी जीव नीवार भरमतम[31], दूसरा अंतरा)

(६) **द्रष्य ६**

कथावाचकः मैंने यह अद्भुत नजारा अपनी स्वयं की आँखों से देखा था। जिस प्रकार नन्दनवन में अनेक वृक्षों के विविध प्रकार के पत्र-पुष्प-फलादि खिल उठते हैं, उसी प्रकार **संवर** और **निर्जरा** भावना से साधक आत्मा के चैतन्यरूपी नन्दनवन में अनेक गुणों की विविध प्रकार की पर्यायें खिल उठती हैं ।[32] चैतन्य की स्वानुभूतिरूप खिले हुए नन्दनवन में साधक आत्मा आनन्दमय विहार करता है। बाहर आने पर कहीं रस नहीं आता ।[33] मगर फिर भी, पूर्णता अभी हुई नहीं इसलिए भूतकाल में जहां परिभ्रमण किए ऐसे **लोक** भावना का चिंत्वन बाहुबली भगवान ने किया।

अंतर्मनः षट् द्रव्यमई इस लोकमें आत्मा ही सार है। नर, नरक, स्वर्ग, तिर्यच इन गतिओ में परिभ्रमण ही संसार है।

बालकः ये चार गतियों की बात तो बहुत स्थूल है।

बालकः यहां तो ध्रुवमें अपनापन करने की बात है।[34]

बालकः सब कुछ आत्मा में है, बाहर कुछ नहीं है ।

बालकःअगर कुछ भी जानने की इच्छा होती हो तो अपने आत्मा की साधना करनी होगी।

बालकः पूर्णता प्रगट होनेपर, केवलज्ञान होने पर लोकालोक उसमें ज्ञेयरूपसे ज्ञात हो जाएंगे ।[35] इस तरह **लोक** भावना सार्थक होगी।

अंतर्मनः मैं एक चैतन्य को ही ग्रहण करूँगा। सर्व विभावों से परिमुक्त होता हुआ अत्यन्त निर्मल निज परमात्मतत्त्व को ही ग्रहण करूँगा, उसीमें ही लीन होने की अभ्यर्थना रखता हूँ, मेरी पर्याय से लक्ष हटाके, एक परमाणु मात्र की भी आसक्ति छोड़के मैं अब मोक्ष मार्ग में आगे बढ़ने का निर्णय करता हूँ ।[36]

(७) **द्रष्य ७**

बालकः चैतन्य का ग्रहण करो।

बालकः चैतन्य का ग्रहण ही रत्नत्रय है, बोधि है।

દિગંબર જિનબિંબ પંચકલ્યાણક પ્રતિષ્ઠા મહોત્સવ
સોનગઢ

---

[30] द्रष्टि ना निधान, बोल ६८
[31] भक्ति – ज्ञानी जीव नीवार भरमतम, पं. दौलतरामजी
[32] बहेनश्री के वचनामृत, बोल १७५
[33] बहेनश्री के वचनामृत, बोल १७७
[34] द्रव्य द्रष्टि प्रकाश, बोल १२६
[35] बहेनश्री के वचनामृत, बोल ७०
[36] बहेनश्री के वचनामृत, बोल १७०

बालकः यह रत्नत्रय प्रगट करना ही अति दुर्लभ है।

बालकः अनादि से प्रगट नहिं किया, इस लिए **बोधिदुर्लभ** है।

बालकः लेकिन अपने ही स्वभाव को प्राप्त करना है और उसमें किसी की आवश्यकता नहिं इसलिए सुलभ भी है।

अंतर्मनः एक ऐसी भावना है जो .....मुझे स्वरूप की लीला जहाँ जात्यंतर है वहाँ ले जाये। मैं मुनि वेश धारण कर चैतन्य के बाग में ही क्रीड़ा करते-करते कर्म के फल का नाश करूँ। बाहर में जो आसक्ति है उसे तोड़कर स्वरूप में लीन हो जाऊ। स्वरूप ही मेरा आसन, स्वरूप ही मेरी निद्रा, स्वरूप ही मेरा आहार हो।[37]

धन्य वह निर्ग्रंथ मुनीदशा ! मुनिदशा अर्थात् केवलज्ञान की तलहटी । मुझे तब अंतर में सिर्फ़ चेतन्य के अनंत गुण- पर्यायों का परिग्रह होगा; विभाव बहुत छूट गया होगा। बाहर में देहमात्र परिग्रह होगा। प्रतिबंधरहित सहज दशा होगी।[38]

मैं भी अखण्ड द्रव्य को ग्रहण कर के प्रमत्त- अप्रमत्त स्थितिमें स्वरूप में निरंतर जागृत ही रहूँगा।[39]

मैं स्वरूप में ही लीला करूँगा, मैं स्वरूप में ही विचरण करूँगा। और सम्पूर्ण श्रामण्य प्रगट करके मैं लीलामात्र में श्रेणी मांडकर केवलज्ञान प्रगट करूँगा।[40]

वहां, भावनाओं की पूर्णता के फल में अनंत चतुष्टय रूप अपनी गुणसत्ता का अनुभवन होगा निविकल्प रूप प्रत्यक्ष रूप स्वसंवेदन होगा। मैं अद्भुत ऐसी **धर्म** भावना का उद्घोष करूँगा।

मगर मैं वहां अरिहंत दशा में नहीं रुकूंगा। सिद्ध नगर में अनन्त सिद्ध विराजते हैं। उन्होंने पहले बाहर से नजर समेटकर अन्दर का विस्तार किया था। मैं भी वही करूँगा। मैं तो पूर्ण अभेद परमात्मा ही हूँ, मुझ में और परमात्मा में कुछ अन्तर नहीं है।[41] मैं भी गुणस्थानातित होकर मार्गणा स्थानांतित होकर लोकके अग्रभागमें जहां अनंत सिद्ध विराजते हैं ऐसे सिद्धलोकमें समयांतरमें पहुंच जाऊंगा।

(८) **द्रष्य ८**

कथावाचक: चैतन्य को चैतन्यमें से परिणमित भावना अर्थात् राग-द्वेषमें से नहीं उदित हुई भावना--ऐसी यथार्थ भावना हो तो वह भावना फलती ही है। यदि नहीं फले तो चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाय। परन्तु ऐसा होता ही नहीं। चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है - ऐसा ही वस्तुका स्वभाव है।[42]

[37] बहेनश्री के वचनामृत, बोल ७८
[38] बहेनश्री के वचनामृत, बोल ७१
[39] बहेनश्री के वचनामृत, बोल ७२
[40] बहेनश्री के वचनामृत, बोल ७८
[41] द्रष्टि ना निधान, बोल २४
[42] बहेनश्री के वचनामृत, बोल २१

अरे यह बात करते हुए तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते है। क्या अद्‌भुत मेरा सौभाग्य है। मैं इतिहास का एक ऐसा अवसर हूँ जहाँ एक ही समय में आत्मा का स्पंदन चला, बाहुबली के अंतर्मन का मंथन चला, वैराग्य का घोलन चला और बारह भावना का अनुभवन भी चला। आखिर वह क्षण आ ही गई जिसने वैराग्य भावना का इतिहास रच दिया। मेरा अंत एक नया सवेरा लेके आया और तब...श्री बाहुबली ने फ़रमाया....

बाहुबली: हे भ्राताश्री मेरे यह दंडनिय अपराध को क्षमा करें। मुझे मेरे भाई की और ऐसा द्रोह नहीं करना चाहिए था बड़े भाई का विरोध करके मैंने यह लोकअपवाद खड़ा किया है।

भरतः अरे भाई आपका कोई अपराध नहीं। मैं ही क्रोधावेश में अपने होश खो बैठा था। आपकी कोई भी वृत्ति से मुझे असंतोष नहीं है।

बाहुबलीः नहीं भाई, मैंने युद्ध के रंग मे आपके तरफ विरोध दिखाने की क्षुद्रता की है। क्षणभंगुर कर्म के वशीभूत हो कर मैं ये कैसे निंदनीय परिणाम कर बैठा।

भरतः नहिं भाई इस में आपकी कोई गलती नहीं है। हुंडा-अवसर्पीणी काल के कारण मेरी ऐसी हार होगी, एसा मुझे श्री आदि प्रभु ने पहेले से बताया था।

बाहुबली: कालदोष से हुई यह घटना मेरे निमित्त से प्रगट हुई। यह बात मुझे खटक रही हैं।भाई मेरी परिणती इस संसार से विरक्त हुई है। अभी अभी मैंने वैराग्य की जननी बारह भावनाओं का चिंतवन किया है। अब मैं कैलाश जाकर इस संसार का छेद करनेवाली जैनेश्वरी दीक्षा लेना चाहता हूँ, आप मेरी यह प्रार्थना का स्वीकार करे।

भरतः अरे नहीं नहीं तुम इसके अलावा कुछ भी मांगो, मैं यह प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सकता। आपके बिना यह संसार बहुत अधूरा है, बाक़ी भाई भी तो दीक्षा लेके चले गए... और अब तुम भी....दीक्षा लेना चाहते हो?

बाहुबलीः बड़े भैया, मैं दीक्षा लेकर मोक्ष मंदिर में आपकी प्रतीक्षा करूँगा। अब संसार सूख की लालसा मेरे चित्त में रही नहीं। जिस देह ने युद्ध भूमि में आप के विरुद्ध खड़े रहने में साथ दिया, उसी देह का ममत्व त्याग कर मैं अखंड साधना करूंगा। मुझे तो अब आत्मा ही शरणरूप है। अरहन्त अर्थात् वीतरागी पर्याय, सिद्ध अर्थात् वीतरागी पर्याय, आचार्य, उपाध्याय और साधु अर्थात् वीतरागी पर्याय--यह सब वीतरागी पर्यायें मेरे आत्मा में ही पड़ी हुई है। [43]

भ्राताश्री, मुक्ति के लिए हमेशा योग नहीं बनता, मगर जब बनता है तब आत्मासाधन कर ही लेनी चाहिए। इस लिये आप अब मुझे दीक्षा लेने की आज्ञा दे...

भरतः भाई उठो ... जाओ मुक्ति पथ पे आगे बढ़ो। ध्रुव के धाम की धधकती धूनी धगशसे धखा और धन्य हो जाओ।

वीतरागी जैन धर्म की जय हो!!!

विराजित होनेवाले बाहुबली मुनिंद्र भगवान की जय हो!!!

---

[43] द्रष्टि ना निधान, बोल ६०